**ओ३म्**

**‘अग्निहोत्र यज्ञ न करने में पाप और करने से पाप निवृत्ति**

**की मान्यता के सम्बन्ध में विचार’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

आर्यसमाज के विद्वान पं. वीरेन्द्र शास्त्री ऋषि दयानन्द के सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में लिखे शब्दों का उल्लेख करते हैं जिसमें कहा गया है कि होम, अग्निहोत्र वा देवयज्ञ न करने पर पाप होता है। इसका कारण बताते हुए ऋषि कहते हैं कि मनुष्य के शरीर से उत्पन्न दुर्गन्ध से जो वायु व जल आदि में विकार, प्रदुषण व बिगाड़ होता है, उससे रोगोपत्ति होने से प्राणियों को दुःख होता है। दुर्गन्ध की उत्पत्ति, उससे रोग एवं प्राणियों को जो दुःख होता है वह उस व्यक्ति द्वारा जाने अनजाने में किया गया पाप होता है। इसका निवारण बताते हुए ऋषि ने कहा है कि **‘इसलिये उस पाप के निवारणार्थ उतना सुगन्ध वा उससे अधिक वायु और जल में फैलाना चाहिये। उसका निवारण अग्निहोत्र यज्ञ से होता है। यदि वह करें तो वह पाप से बच सकता है अन्यथा उसे पाप लगता है।’** आचार्य वीरेन्द्र शास्त्री जी अपने प्रवचन में श्रोताओं को यह बताते हैं कि यज्ञ करने से पुण्य नहीं होता अपितु इससे तो मनुष्य उससे नियमित रूप हो रहे पापों से मुक्त होता है। उनके अनुसार दैनिक यज्ञ एक प्रकार का कर्ज चुकाना है। यज्ञ को वह पुण्यकारी कार्य व अनुष्ठान नहीं मानते। हमने एक वर्ष पहले भी उनके प्रवचन में यह बातें सुनी थी और एक सप्ताह पूर्व आर्यसमाज प्रेमनगर, देहरादून के वार्षिकोत्सव पर भी उन्होंने अपने इन्हीं विचारों को प्रस्तुत किया।

ऋषि दयानन्द जी द्वारा विधान किये गये पंच महायज्ञों में पहला यज्ञ ब्रह्मयज्ञ अर्थात् सन्ध्या है। सन्ध्या में समर्पण मन्त्र में ईश्वर से प्रार्थना की जाती है कि हे दया के सागर परमात्मा ! आपकी कृपा से हम जो नाना प्रकार के जप व उपासना आदि के कार्य करते हैं उनसे हमें आज ही धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति हो। यदि ब्रह्म यज्ञ करना धर्म और पुण्यकारी है तो यज्ञ में तो हम वेदमन्त्रों के साथ साथ अपने समय व भौतिक द्रव्यों को भी यज्ञाग्नि में आहूत करते हैं। यह पुण्यकारी कार्य न हो, यह बात मन व आत्मा को उचित प्रतीत नहीं होती। यज्ञ में समिदाधान व पंचघृताहुति मन्त्रो में मन्त्र बोला जाता है **‘अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्द्धय चास्मान् प्रजया पशुभिब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा।। इदमग्नये जातवेदसे-इदन्न मम।।’** मन्त्र में ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि हे सब पदार्थों में विद्यमान परमेश्वर ! यह मेरा आत्मा तेरे लिए समिधारूप है। हे अग्ने ! इससे मुझमें तू प्रकाशित हो और अवश्य ही बढ़। तू हमको बढ़ा और पुत्र-पौत्र, सेवक आदि अच्छी प्रजा से, गौ आदि पशुओं से, वेद-विद्या के तेज से और धन-धान्य, घृत, दुग्ध, अन्न आदि से समृद्ध कर। यह सुन्दर आहुति सम्पूर्ण पदार्थों में विद्यमान ज्ञानस्वरूप परमेश्वर के लिए है, मेरे लिए नहीं है। इस व यज्ञ के ऐसे अनेक मन्त्रों के अर्थ पर विचार करने से यह ज्ञात होता है कि हम शरीर से उत्पन्न दुर्गन्ध का ऋण नहीं चुका रहे हैं अपितु ईश्वर से समृद्धि, पुत्र-पौत्र, सेवक, अच्छी प्रजा, गो, वेद-विद्या के तेज, धन-धान्य, घृत, दुग्ध, अन्न आदि की प्रार्थना भी कर रहे हैं। अतः अग्निहोत्र देवयज्ञ से मनुष्य शरीर से होने वाली दुर्गन्ध के पाप से मुक्त तो होता ही है जो कि ऋषि दयानन्द जी के वचनों से स्पष्ट है, साथ हि उसे स्वास्थ्य, ज्ञान, कल्याण व सुखदायक पदार्थों की प्राप्ति भी होती है अन्यथा इस मन्त्र का यज्ञ में बोला जाना सार्थक न होकर अनावश्यक और निरर्थक ही कहा जायेगा। इन पंक्तियों को लिखते समय हमारे मन में दो बाते और आईं हैं उनका भी उल्लेख कर देते हैं। हमने यज्ञ करने वाले अनेक लोग देखें हैं जो यज्ञ करके समृद्ध होने के साथ सभी प्रकार के वैभव व धन-धान्य से पूर्ण हुए हैं। श्री दर्शन कुमार अग्निहोत्री, श्री सत्यानन्द मुंजाल व उनका परिवार, महाशय धर्मपाल जी, स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती जी आदि अनेक उदाहरण दे सकते हैं। दूसरा उदाहरण भोपाल का है। वहां जब 2-3 दिसम्बर, 1984 की रात्रि को यूनियन कार्बाइड की फैक्टरी में भोपाल गैस त्रासदी हुई तो वहां एक याज्ञिक आर्यपरिवार यज्ञ कर रहा था। यज्ञ के प्रभाव से वह परिवार ही नहीं बचा अपितु उसके गो आदि पशु भी बच गये थे जबकि उनके चारों ओर के लोग व परिवार आदि **‘मिथाइल आइसो सायनेट गैस’** से मृत्यु व विकलांगता के शिकार हुए थे। यदि यज्ञ से केवल शरीर से उत्पन्न दुर्गन्ध संबंधी पाप ही दूर होते तो आर्यजनों की समृद्धि तथा भोपाल का चमत्कार कदापि नहीं होता।

हमने आचार्य वीरेन्द्र शास्त्री जी की बातों पर विचार किया और स्वामीजी के सत्यार्थप्रकाश में लिखे शब्दों को भी ध्यान से पढ़ा। स्वामी जी ने यह कहीं नहीं लिखा कि यज्ञ करने से पुण्य नहीं होता। उन्होंने तो मात्र यह कहा है कि मनुष्य शरीर से उत्पन्न दुर्गन्ध, उससे वायु एवं जल आदि में बिगाड़ होकर रोगात्पत्ति होने से प्राणियों को जो दुःख होता है उस कारण उतना ही पाप उस मनुष्य को होता है। उसकी निवृति के लिए उनका सुझाव है कि उस पाप के निवारणार्थ उतना सुगन्ध वा उससे अधिक वायु और जी में फैलाना चाहिये। ऐसा करके मनुष्य अपने पाप से मुक्त हो जाता है। पाप से मुक्ति तो शायद घृत को अग्नि में जला देने से ही हो सकती थी परन्तु उसे अग्निहोत्र रूप यज्ञ करके पाप निवृत्ति सहित पुण्यों की प्राप्ति भी होती है। इसी लिए ईश्वर ने वेद में यज्ञ करने की आज्ञा दी है और ऋषियों ने उसका विस्तार किया है। यज्ञ का **‘स्विष्टकृदाहुतिमन्त्र’** भी महत्वपूर्ण है। मन्त्र का अर्थ है कि **‘जो कुछ इस यज्ञकर्म में मैंने विधि से अधिक किया है अथवा जो कुछ भी विधि से न्यून किया है, शुभ इच्छाओं को पूर्ण करनेवाला परमात्मदेव सब, शुभ इच्छाओं को जानता है, मेरी शुभ इच्छाओं को पूर्ण कर देवे। शुभ इच्छाओं को पूर्ण करनेवाले यज्ञ को सफल बनाने, सब प्रायश्चित्तरूप दी गई आहुतियों एवं कामनाओं को पूर्ण करनेवेाले परमेश्वर के लिए यह आहुति है। वह परमात्मा हमारी सब कामनाओं को पूर्ण करे तथा श्रद्धा से मेरा यज्ञकर्म उसकी कृपा से सदा सफल हो।’** इस मन्त्रार्थ से यह भी सिद्ध है कि यज्ञ केवल शरीर के निमित्त से उत्पन्न दुर्गन्ध के प्रभाव को दूर करने मात्र के लिए ही नहीं किया जाता है अपितु अनेक लाभों व कामनाओं की पूर्ति के लिए किया जाता है।

हमें यह भी लगता है कि यहां कर्म फल व्यवस्था सिद्धान्त **‘अवश्यमेव हि भोक्तव्यं कृतम्कर्म शुभाशुभं’** में कुछ ढील दी गई है। इस सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य का कोई अशुभ कर्म क्षमा नहीं किया जाता। ऋषि वचन हैं कि यदि हम उस दुर्गन्ध (जो कि हमारे द्वारा किया गया पाप है) से अधिक सुगन्ध उत्पन्न करें व वायु आदि में फैला दे तो उस पाप का निदान हो जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि यह ऐसा पाप है जिसका निदान दुःख भोग कर नहीं अपितु यज्ञ करके किया जा सकता है। यह भी हो सकता है कि यदि हमसे अनजाने में जो अन्य पाप हो जाते हैं उन सबका निदान भी यज्ञ वा दान आदि से हो जाता होगा। अतः सभी अशुभ कर्मों का परिणाम अवश्यमेव दुःख रूपी फल भोगना न होकर यज्ञ आदि से उसमें छूट का मिलना अनुमान होता है।

यज्ञ में हम स्तुति, प्रार्थना व उपासना के आठ मन्त्रों का पाठ भी करते हैं। क्या इनका परिणाम भी शरीर से उत्पन्न दुर्गन्ध रूपी पाप में समयोजित हो जाना होता है। हमें लगता है कि ऐसा नहीं है। इन मंत्रों में जो प्रार्थनायें हैं वह हमारी पात्रता के अनुसार उचित समय पर अवश्य पूरी होती हैं। यह दुर्गन्ध के पाप निवारण से अतिरिक्त लाभ हमें मिलता है। इसी प्रकार दैनिक व विशेष यज्ञ में स्वस्तिवाचन व शान्तिकरण आदि मन्त्रों में यज्ञ में जो प्रार्थनायें की जाती हैं, वह भी परमात्मा की व्यवस्था अनुसार उचित समय आने पर फलीभूत व पूर्ण होती हैं, न होती तो इनका विधान करना उचित नहीं था। एक अन्य महत्वपूर्ण बात यह है कि दुर्गन्ध से पाप निवारणार्थ ऋषि दयानन्द जी ने दैनिक यज्ञ में 16-16 आहुतियों का विधान किया है। वह यह भी कहते हैं कि एक आहुति 1 माशा से न्यून नहीं होनी चाहिये, अधिक हो सकती है। 1 माशा 0.97 ग्राम के बराबर होता है। इस प्रकार लगभग 6 ग्राम की एक आहुति होनी चाहिये। 16 आहुतियों का परिमाण 96 ग्राम होता है। दो समय की आहुतियों मे न्यूनतम 192 ग्राम घृत का न्यूनातिन्यून प्रयोग करना चाहिये। इतने घृत से आहुतियां देने से एक व्यक्ति व एक परिवार का दुर्गन्ध उत्पन्न होने के पाप का निवारण हो जाता है। अब यदि कोई मनुष्य इस मात्रा से अधिक धृत व साकल्य का प्रयोग करता है तो वह अतिरिक्त सुगन्धि उत्पन्न होने से पुण्य का भागी तो होगा ही क्योंकि यह उसके द्वारा आवश्यक मात्रा से अधिक दुर्गन्ध की निवृत्ति वा सुगन्ध उत्पन्न की गई है। इसके साथ ही वेदमन्त्रोच्चार और साकल्य की आहुतियों सहित वह ईश्वर का जो ध्यान व प्रार्थना आदि करता है, उसका लाभ व पुण्य भी उसके संचित कर्मों में जुड़ेगा ही।

घृत आहुतियों के परिमाण पर यदि विचार करें तो प्रातः व सायं यज्ञ में न्यूनातिन्यून लगभग 200 ग्राम घृत से आहुतियां दी जानी होती हैं। एक महीने में दैनिक यज्ञ करने में 6 किमी. घृत की आवश्यकता पड़ेगी। आजकल पंतजलि आयुर्वेद का गोघृत 530 रूपये प्रति किग्रा. मिलता है। अतः एक परिवार को लगभग 3200 रूपये का घृत क्रय करना होगा। सभी लोग शायद यह व्यय वहन नहीं कर सकते। कुछ ही लोग सम्भवतः इसे करते होंगे व करते हैं। शायद अपनी आर्थिक स्थिति के कारण लोग घृत की आहुति का परिमाण कम रखते हैं। जो भी हो यज्ञ अवश्य करना चाहिये। अपनी अपनी सामर्थ्यानुसार घृत व साकल्य की आहुतियां दी जानी चाहिये। यदि यज्ञ के साधन न भी हो तो यज्ञ के मन्त्रों का उच्चारण सहित व मौन पाठ कर भी यज्ञ कर लेना चाहिये। इससे भी कुछ लाभ तो यज्ञकर्ता को होगा ही।

हमें लगता है कि दैनिक यज्ञ से न केवल शरीर से उत्पन्न दुर्गन्ध से होने वाले पापों से हमें मुक्ति मिलती हैं वहीं यज्ञ में बोले जाने वाले मन्त्रों की प्रार्थना के अनुरूप लाभ भी हमें ईश्वर द्वारा होता है। यज्ञ पापों को दूर करने सहित पुण्यकारी दोनों प्रकार का कार्य व साधन है। यह कहना कि यज्ञ से केवल दुर्गन्ध उत्पन्न होने वाले पाप की ही निवृत्ति होती है आंशिक रूप में ही ठीक है, सर्वांश में नहीं। यज्ञ से अनेक लाभ होते है। अग्निहोत्र यज्ञ करते हुए देवपूजा, संगतिकरण व दान का भी संयोग होता है। इनके अतिरिक्त लाभ भी मिलते हैं। रोग निवृत्ति, स्वस्थ जीवन की प्राप्ति तथा बौद्धिक एवं शारीरिक उन्नति भी होती है। विद्वानों से निवेदन है कि वह भी अपने विचारों से लाभान्वित करें। ओ३म् शम्।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**